RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : MISC-II/CPM/04/KPHO/2017-19
प्रधान डाकघर कानपुर–डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/–

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

जनवरी 2019 | वर्ष – 10 | अंक : 12 | मूल्य : 5/–

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074

संरक्षक मण्डल :

मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (इं. जल संस्थान), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621

कानूनी सलाहकार :

एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, एड. सुशील कुमार

राज्य उत्तर प्रदेश राज्य ब्यूरो प्रमुख :

सुनीता धीमान, 414/12, शास्त्री नगर, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 9450871741

क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :

40/69, डी–5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631

मध्य प्रदेश राज्य :

ब्यूरो चीफ मुकेश कुमार अहिरवार, छत्तरपुर, मो.: 09039546658

छत्तीसगढ़ राज्य :

दिलीप कुमार कोसले, मो. : 09424168170

दिल्ली प्रदेश :

C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट–III, बदरपुर, नई दिल्ली–44, मो. : 09540552317

राजस्थान राज्य :

रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.–1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला–अलवर–301001, मो. : 09887512360

चिरंजीलाल बैरवा (व्यावस्थापक) मेहरा आदर्श विद्या मन्दिर, भीम नगर कालोनी, राज भट्टा, दिल्ली रोड, अलवर, जिला–अलवर, मो.–09829855349

बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.–08058198233

हरियाणा राज्य :

डा. रमेश रंगा, ग्राम–सराय, औरंगाबाद, पो.–बहादुरगढ़,जिला–झज्जर (हरियाणा),09416347052

संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :

ग्रा व पो.–रिवई (सुनैचा), जिला–महोबा (उ.प्र.)

मो. : 9005204074, 8756157631

E-mail : dravinbharat1@gmail.com

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी

उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.–रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें –
भारतीय स्टेट बैंक, शाखा–नवीन मार्केट, कानपुर
खाता सं.–33496621020 • IFSC CODE-SBIN0005307

मुस्लिम लीग की मांगे क्या हैं?

26 मार्च, 1940 को हिंदू भारत एकाएक इतना अधिक ध्यानाकर्षण का केन्द्र बन गया जैसा, इससे पूर्व कभी नहीं हुआ था। उस दिन मुस्लिम लीग ने अपने लाहौर अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया था :

1. अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की परिषद तथा कार्यकारणी समिति द्वारा संवैधानिक मुद्दे पर 27 अगस्त, 17 और 18 सितंबर तथा 22 अक्टूबर 1939 और 3 फरवरी, 1940 को पारित प्रस्तावों का समर्थन करते हुए अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का यह अधिवेशन जोरदार शब्दों में इस तथ्यों पर बल देता है कि भारत सरकार के 1935 के अधिनियम में निहित फेडरेशन की योजना इस देश की असाधारण परिस्थितियों में बिल्कुल अनुपयुक्त और असाध्य है और भारतीय मुसलमानों को पूर्णतया अस्वीकार्य है।

2. मुस्लिम लीग आगे अपना यह मत स्पष्ट करती है कि यद्यपि 18 अक्टूबर 1939 को वायसराय द्वारा महामहिम की सरकार की ओर से की गई घोषणा इस सीमा तक आश्वस्त करने वाली है कि उसमें यह घोषित किया गया है कि जिस नीति और योजना पर भारत सरकार का अधिनियम 1935 आधारित है, उस पर विभिन्न दलों के हितों और भारत के विभिन्न समुदायों के परामर्श से पुनर्विचार किया जाएगा, किंतु भारत के मुस्लिम तब तक संतुष्ट नहीं होंगे जब तक कि समग्र संवैधानिक योजना पर नए सिरे से पुनर्विचार न किया जाए और यह कि कोई भी संशोधित योजना मुसलमानों को तब तक स्वीकार्य नहीं होगी जब तक कि वह उनकी अनुमोदन और सहमति से न बनाई जाए।

3. यह निश्चय किया जाता है कि अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के अधिवेशन का यह सुविचारित मत है कि कोई संवैधानिक योजना इस देश में तब तक कारगर नहीं होगी, अथवा मुसलमानों को स्वीकार्य नहीं होगी, जब तक कि उसे निम्नलिखित बुनियादी सिद्धांतो के आधार पर नहीं बनाया जाएगा, अर्थात् वह भौगोलिक तौर पर सन्निहित ईकाइयों, में सीमांकित की जाए जो इस तरह गठित हों कि आवश्यकता पड़ने पर उनका पुनर्समायोजन किया जा सके; कि जनसंख्या की दृष्टि से मुस्लिम बहुसंख्यक क्षेत्र जैसे भारत के उत्तर–पश्चिमी और पूर्वी क्षेत्र है, उन्हें स्वतंत्र राज्य के गठन हेतु वर्गीकृत किया जाए, जिससे संवैधानिक ईकाइयां स्वायत्त और प्रभुसत्तासम्पन्न हों।

4. इन इकाइयों और क्षेत्रों में अल्पसंख्यकों के धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक अधिकारों और अन्य हितों की सुरक्षा के लिए संविधान में उनके परामर्श से पर्याप्त प्रभावी तथा अनिवार्य संरक्षणों का विशेष प्रावधान किया जाए तथा भारत के अन्य भागों में जहाँ मुसलमान अल्पसंख्यक हैं, उनके तथा अन्य अल्पसंख्यकों के धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक अधिकारों एवं अन्य हितों की सुरक्षा के लिए संविधान में उनके परामर्श से पर्याप्त प्रभावी तथा अनिवार्य संरक्षण का विशेष प्रावधान किया जाएगा।

5. यह अधिवेशन कार्यकारिणी समिति को पुनः प्राधिकृत करता है कि वह इन बुनियादी सिद्धांतों के अनुरूप संविधान की ऐसी योजना बनाए जिसमें विभिन्न क्षेत्रों जैसे रक्षा, विदेशी मामले, संचार, चुंगी और अन्य आवश्यक मामलों के संबंध में इन ईकाइयों को सभी अधिकार दिए जाने का समावेश हो।

इस प्रस्ताव में क्या परिकल्पित है? पैरा 3 से यह स्पष्ट हो जाएगा कि प्रस्ताव में यह व्यवस्था है कि जो मुस्लिम बहुल क्षेत्र हैं, वे स्वतंत्र राज्यों में समाहित होंगे। ठोस शब्दों में इसका तात्पर्य यह है कि उत्तर–पश्चिम में पंजाब, उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत, बलूचिस्तान और सिंध तथा पूर्व में बंगाल ब्रिटिश भारत के प्रांत बने रहने के बजाए ब्रिटिश भारत से अलग स्वतंत्र राज्य बनेंगे। मुस्लिम लीग के प्रस्ताव का यही निष्कर्ष और सार–संक्षेप है।

क्या इस प्रस्ताव में यह परिकल्पि है कि ये मुस्लिम प्रांत राज्यों में समाविष्ट किए जाने के बाद, इनमें से प्रत्येक एक स्वतंत्र प्रभुसत्तासंपन्न राज्य होगा अथवा ये एक संरचना के रूप में मिलकर एक राज्य बनेंगे और क्या उसका रूप संघीय होगा या एकात्मक? इस मुद्दे पर यह प्रस्ताव अंतर्विरोधी भले ही न हो, अस्पष्ट तो है ही। इसमें क्षेत्रों को मिलाकर 'स्वतंत्र राज्य' बनाने की बात कही गई है, जिसमें 'संघटनात्मक इकाइयो' के स्वायत्त और सार्वभौम होने की बात भी है। 'इकाई' शब्द का प्रयोग यह संकेत देता है कि इसका तात्पर्य संघ से है। यदि ऐसा है तो 'सार्वभौम' शब्द का 'ईकाइयों' के रूप में प्रयोग निरर्थक है। ईकाइयों का संघ और ईकाइयों की प्रभुसत्ता परस्पर विरोधी हैं। यह हो सकता है कि जो कुछ परिकल्पित है, वह महासंघ या परिसंघ हो। मगर फिलहाल यह बात बहुत महत्वपूर्ण नहीं है कि क्या ये स्वतंत्र राज्य संघ बनेंगे या महासंघ। महत्वपूर्ण बात तो यह बुनियादी मांग है कि ये क्षेत्र भारत से पृथक स्वतंत्र राज्य बनें।

प्रस्ताव की शब्दावली कुछ ऐसी है कि इसमें उल्लिखित योजना बिल्कुल नई मालूम पड़ती है। परंतु इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता कि यह प्रस्ताव उस योजना को पुनर्जीवित करने की मांग करता है जो सर मुहम्मद इकबाल ने दिसंबर 1930 में लखनऊ में आयोजित मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में पेश की थी। परन्तु तब लीग ने इसे स्वीकार नहीं किया था। मगर श्री रहमत अली एम.ए.एल. एल.बी. ने इसे उठाया, जिन्होंने इसे 'पाकिस्तान' का नाम दिया, और जिस नाम से यह जानी जाती है। श्री रहमत अली ने 1933 में पाकिस्तानी आंदोलन नींव डाली। उन्होंने भारत को दो भागों, अर्थात् पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में विभाजित किया। उनके पाकिस्तान में पंजाब, उत्तर–पश्चिम सीमा प्रांत, कश्मीर, सिंध और बलूचिस्तान शामिल थे। उनकी राय में शेष भाग हिंदुस्तान था। उनका विचार था कि उत्तर में पांच मुस्लिम प्रांतों को मिलाकर एक 'स्वतंत्र और पृथक पाकिस्तान के रूप में स्वतंत्र राज्य' हो। यह सुझाव गोलमेज सम्मेलन के सदस्यों में वितरित किया गया था, परंतु आधिकारिक तौर पर यह कभी प्रस्तुत नहीं किया गया। यह निजी तौर पर ब्रिटिश सरकार की सहमति प्राप्त करने का प्रयास मालूम होता है। मगर ब्रिटिश सरकार ने इस पर विचार करने से

मना कर दिया, क्योंकि उसकी राय में यह पुराने मुस्लिम साम्राज्य की ही थी।

लीग ने पाकिस्तान की अपनी भूल योजना का विस्तार मात्र ही किया है। उसने बंगाल और आसाम में मुसलमानों को शामिल करके पूर्व में एक और मुस्लिम राज्य की योजना बनाई है। शेष, इसका सार और सामान्य रूपरेखा वही है जो सर मुहम्मद इकबाल ने प्रस्तावित की थी और जिसका प्रचार रहमत अली ने किया था। पूर्व के इस नए मुस्लिम राज्य को कोई नाम नहीं दिया गया। इससे श्री रहमत अली की विचारधारा और सिद्धांत में कोई परिवर्तन नहीं आया। कोई भी जिस जटिलता का अनुभव करता है वह यह है कि लीग ने इसे विस्तार देते हुए संक्षिप्त और कर्णप्रिय नामों वाले दो मुस्लिम राज्यों का नामकरण नहीं किया जैसा कि उससे आशा थी। उसने केवल पश्चिम में मुस्लिम राज्य और पूर्व में मुस्लिम राज्य के दो लंबे–चौड़े नाम दिए हैं। इस कठिनाई को हल करने के लिए पाकिस्तान नाम को सुरक्षित रखते हुए मेरा सुझाव यह है कि दो राष्ट्रों के सिद्धांत पर आधारित इस विचारधारा और इसकी परिणत, अर्थात विभाजन की अभिव्यक्ति, के लिए उसे उत्तर–पश्चिम और उत्तर–पूर्वी पाकिस्तान कहा जाए।

इस योजना ने हिंदू भारत का ध्यान ही आकृष्ट नहीं किया, अपितु उसे आघात भी पहुंचाया है। अब यह पूछा जाना स्वाभाविक है इस योजना में नई और स्तंभित करने वाली बात कौन–सी है?

II

क्या उत्तर–पश्चिम में प्रातों को मिलाने वाला विचार स्तंभित करने वाला है? यदि ऐसा तो यह स्मरण रखा जाए कि इन प्रांतों को मिलाना बहुत पुरानी परियोजना है, जिसे एक के बाद दूसरे वायसरायों, प्रशासकों और जनरलों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। उत्तर–पश्चिम में (प्रस्तावित पाकिस्तान के प्रांतों में से) पंजाब और उत्तर–पश्चिम सीमा प्रांत 1849 में अंग्रेजों द्वारा पंजाब पर विजय प्राप्त किये जाने के बाद से एक ही थे। ये दोनों 1901 तक एक ही प्रांत रहे। 1901 में लार्ड कर्जन ने इन्हें अलग कर दो प्रांत बनाए जो अब भी हैं। जहाँ तक पंजाब को सिंध से मिलाने का सवाल है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि सिंध विजय पंजाब से पहले होने के बजाय बाद में हुई होती, तो सिंध पंजाब में मिला दिया गया होता; क्योंकि ये दोनों प्रांत न केवल आपस में मिले हुए हैं बल्कि एक नदी से जुड़े हैं जिससे दोनों के बीच एक स्वाभाविक संबंध स्थापित होता है। यद्यपि सिंध बंबई में मिलाया गया था, जो पंजाब के अलावा ऐसा एकमात्र आधार था, जिससे उसका शासन चलाया जा सकता था। सिंध को बंबई से अलग कर उसे पंजाब से मिलाने का विचार त्यागा नहीं गया था और उस दृष्टि से समय–समय पर योजनाएं पेश की जाती रहीं थीं। पहले यह योजना तब पेश की गई जब लार्ड डलहौजी गवर्नर जनरल थे, परन्तु वित्तीय कारणों से इसे कोर्ट ऑफ डॉयरेक्टर्स ने मंजूर नहीं किया। विद्रोह के बाद इस सवाल पर पुनः विचार हुआ, परन्तु हिंदूकुश (इंडस) के साथ संचार की पिछड़ी दशा के कारण लार्ड केनिंग ने इसे मंजूरी देने से इंकार कर दिया। सन् 1876 में लार्ड नॉर्थब्रुक ने राय दी कि सिंध को पंजाब से मिला दिया जाये। सन् 1877 में लार्ड लिटन ने, जो नार्थब्रुक के सानि पर आए थे, पंजाब के 6 सीमावर्ती जिलों और सिंध पार के जिलों को शामिल करके सिंध–पार एक प्रांत का गठन करना चाहा था। इसमें पंजाब के छह सीमावर्ती जिले, अर्थात् हजारा, पेशावर, कोहाट, बन्नू (सिस–सिंध नदी पट्टी को छोड़कर) डेरा इस्माइल खान (उसी छूट के साथ) डेरा गाजी खान और सिंध नदी का पार का सिंध (कराची को छोड़कर) शामिल होते। लिटन का यह भी सुझाव था कि बंबई में पूरा मध्य प्रांत या उसका एक भाग शामिल किया जाना चाहिए ताकि सिंधु नदी के पार के सिंध की भरपाई हो सके। ये प्रस्ताव सेक्रेटी ऑफ स्टेट के मंजूर नहीं किए। जब लार्ड लेंसडाउन वायरस थे (1888–94) तो यही परियोजना, अर्थात् सिंध को पंजाब में मिलाने का सुझाव, अपने मूल रूप में पुनर्जीत हुआ, परंतु बलूचिस्तान एजेंसी का गठन होने के कारण सिंध एक सीमांत जिला नहीं रहा और उस विचार ने जो अपने मकसद में सामरिक था, अपना दावा खो दिया और सिंध पंजाब में शामिल नहीं किया जा सका। यदि अंग्रेजों ने बलूचिस्तान अधिगृहीत नहीं किया होता और लार्ड कर्जन ने पंजाब से उत्तर–पश्चिम सीमा प्रांत को अलग करने का विचार नहीं बनाया होता तो बहुत पहले ही पाकिस्तान एक प्रशासनिक इकाई के रूप में सामने आ गया होता। जहां बंगाल में एक राष्ट्रीय मुस्लिम राज्य के निर्माण के दावे का मामला है, इसमें भी कोई नई बात नहीं है। अनेक लोगों को याद होगा कि 1905 में तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन ने बंगाल और आसाम, को इन दो प्रांतो में विभाजित किया था–1. पूर्वी बंगाल और आसाम, जिसकी राजधानी ढाका थी, और 2. पश्चिम बंगाल, जिसकी राजधानी कलकत्ता थी। पूर्वी बंगाल और आसाम के नए प्रांत में आसाम शामिल था और बंगाल तथा आसाम के ये पुराने जिसे शामिल थे– 1. ढाका 2. मैमन सिंह, 3. फरीदपुर, 4. बाकरगंज, 5. टिपरा, 6. नोआखली, 7. चिटगांव, 8. चिटगांव पहाड़ी क्षेत्र, 9. राजशाही, 10. दिनाजपुर, 11. जलपाईगुड़ी, 12. रंगपुर, 13. वोगस, 14. पटना और 15. मालदा। पश्चिम बंगाल में पुराने बंगाल प्रांत के शेष जिले और आसाम के अन्य जिलों के अलावा मध्यप्रांत का संबलपुर जिला पश्चिम बंगाल को दिया गया था।

एक प्रांत का दो भागों में बंटवारा, जिसे भारतीय इतिहास में बंगाल का विभार न कहा जाता है, पूर्वी बंगाल में एक प्रकार से एक मुस्लिम राज्य के गठन का ही प्रयास था, क्योंकि पूर्वी बंगाल और आसाम का नया प्रांत असम के भागों को छोड़कर एक मुस्लिम बहुल राज्य ही था। किंतु हिंदुओं के प्रबल विरोध के कारण ब्रिटिश सरकार ने 1911 में यह विभाजन रद्द कर दिया, क्योंकि वह हिंदुओं के सामने झुक गयी और उसने मुसलमानों की इच्छा की परवाह नहीं की, क्योंकि वे अपनी आवाज उठाने के लिहाज से काफी कमजोर थे। यदि बंगाल का विभाजन उस समय रद्द नहीं हुआ होता, तो पूर्वी बंगाल में मुस्लिम राज्य एक नई परियोजना नहीं होती, बल्कि वह 39 वर्ष पुराना राज्य हो गया होता

III

क्या हिंदुस्तान से पाकिस्तान के अलग हो जाने का विचार घातक है? यदि ऐसा है, तो मैं उन तथ्यों का स्मरण करना चाहूँगा जो उन मुद्दों से संगति रखते हैं जो कांग्रेस की नीति के बुनियादी सिद्धांत के अनुरूप हैं। यह स्मरण करना होगा कि श्री गांधी ज्यों ही कांग्रेस पर काबिज हुए, उन्होंने इसे लोकप्रिय बनाने के लिए काम किए। इनमें से पहला था सविनय अवज्ञा का श्रीगणेश।

भारतीय राजनीति में श्री गांधी के पदार्पण से पहले सत्ता प्राप्ति के लिए सक्रिय पक्ष थे : कांग्रेस, लिबरल्स (उदारवादी) और बंगाल के आतंकवादी (क्रांतिकारी)। कांग्रेस और लिबरल्स एक ही पार्टी थे और उनके बीच आज की तरह कोई अंतर नहीं था। अतएव हम निरापद रूप से कह सकते हैं कि भारत में मात्र दो दल थे– उदारवादी और आतंकवादी। इन दोनों दलों में प्रवेश की शर्त बड़ी कठोर थी। लिबरल (उदारवादी) पार्टी में प्रवेश की शर्त मात्र शिक्षा ही नहीं, अपितु उच्चस्तरीय ज्ञान भी थी। अध्ययन की दृष्टि से सुप्रतिष्ठित हुए बिना कोई भी लिबरल पार्टी की सदस्यता लेने की कल्पना नहीं कर सकता। उस दल ने अशिक्षितों को राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने से प्रभावी ढंग से रोका था। आतंकवादियों ने, जहां तक भी सोचा जा सकता है, कठोरतम परीक्षा लेने का मार्ग निर्धारित किया था। केवल वहीं लोग, जो उद्देश्य के लिए अपना जीवन ही नहीं, प्राण भी समर्पित करने को तैयार होते थे, उनके संगठन के सदस्य बन सकते थे। अतएव कोई भी भीरू या पाखंडी आतंकवादी (क्रांतिकारी) संगठन में प्रवेश नहीं पा सकता था। सविनय अवज्ञा के लिए किसी ज्ञान या अध्ययन की जरूरत नहीं है। इसमें जीवन न्यौछावर करने का भी आह्वान नहीं है। यह उस विशाल बहुमत के लिए एक सरल माध्यम मार्ग है, जिसने कोई विद्वता हासिल नहीं की और जो यातना की पराकाष्ठा झेलने को भी तैयार नहीं, साथ ही देशभक्त होने का पाखंड भी कर सकता है। इस मध्यम मार्ग ने ही कांग्रेस को लिबरल पाटी और आतंकवादी (क्रांतिकारी) पार्टी की तुलना में अधिक लोकप्रिय बनाया।

श्री गांधी ने जो दूसरी बात की, वह भाषाई राज्यों के सिद्धांत को लागू करना था। श्री गांधी की प्रेरणा और मार्गदर्शन में जो संविधान कांग्रेस ने बनाया, उसके अंतर्गत भारत को भाषायी आधार पर निम्नलिखित प्रांतों में विभाजित किया गया, जिनके मुख्यालय भी यहां उल्लिखित है :

प्रांत	भाषा	मुख्यालय
अजमेर–मेरवाड़ा	हिंदुस्तानी	अजमेर
आंध्र	तेलुगु	मद्रास
आसाम	असमी	गोहाटी
बिहार	हिंदुस्तानी	पटना
बंगाल	बंगाली	कलकत्ता
बंबई (नगर)	मराठी–गुजराती	बंबई
दिल्ली	हिंदुस्तानी	दिल्ली
गुजरात	गुजराती	अहमदाबाद
कर्नाटक	कन्नड़	धारवाड़
केरल	मलायालम	कालीकट
महाकौशल	हिंदुस्तानी	जबलपुर
महाराष्ट्र	मराठी	पूना
नागपुर	मराठी	नागपुर
उत्तर–पश्चिम सीमा प्रांत	पुश्तो	पेशावर
पंजाब	पंजाबी	लाहौर
सिंध	सिंधी	कराची
तमिलनाडु	तमिल	मद्रास
संयुक्त प्रांत	हिंदुस्तानी	लखनऊ
उत्कल	उड़िया	कटक
विदर्भ (बरार)	मराठी	अकोला

इस वितरण में क्षेत्र, जनसंख्या अथवा राजस्व संबंधी पक्ष पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। प्रांतीयता के उद्देश्यों से क्षेत्रों के वितरण संबंधी इस योजना में इस विचार को दृष्टिगत नहीं रखा गया कि प्रत्येक प्रशासनिक इकाई सभ्य जीवन का न्यूनतम स्तर उपलब्ध कराने और जुटाने में समर्थ होनी चाहिए, जिसके लिए यह जरूरी है कि उसमें समुचित क्षेत्र व पर्याप्त जनसंख्या हो तथा अपेक्षित राजस्व की व्यवस्था हो। निर्णायक पक्ष भाषा ही था। इस संभावना पर कोई ध्यान नहीं दिया गया कि ऐसा होने से भारतीय सामाजिक जीवन के पहले से ही ढीले–ढाले ढांचे में एक विघटनकारी तत्व समाविष्ट हो सकता है। निस्संदेह यह योजना लोगों की स्थानीय देशभक्ति को जगाकर उन्हें कांग्रेस के पक्ष में लाने के एकमात्र उद्देश्य से पेश की गई थी। भाषायी प्रांतों का विचार घर कर चुका है और क्रियान्वित करने की मांग इतनी प्रबल और अप्रतिरोधी हो चुकी है कि जब कांग्रेस सत्ता में आएगी तो उसे इस योजना को क्रियान्वित करने को बाध्य होना पड़ेगा। उड़ीसा को बिहार से अलग किया जा चुका है। आन्ध्र मद्रास से पृथक राज्य की मांग कर रहा है। कर्नाटक महाराष्ट्र से अलग होने की मांग कर रहा है। गुजरात ही एकमात्र ऐसा भाषायी प्रांत है जो महाराष्ट्र से पृथक होने की मांग नहीं कर रहा है। या फिर गुजरात ने फिलहाल पृथकता का विचार त्या दिया है। इसका कारण संभवतः यह है कि गुजरात को यह अहसास हो गया है कि महाराष्ट्र से जुड़े रहना, राजनीतिक तथा व्यावसायिक दृष्टि से भी एक बेहतर स्थिति है।

चाहे जो भी, यह तथ्य है कि भाषायी आधार पर पृथकता कांग्रेस के लिए अब एक मान्य सिद्धांत है। यह कहने का कोई, लाभ नहीं कि कनार्टक और आंध्र प्रांत के बंटवारे की मांग भाषा के आधार पर की जा रही है और पाकिस्तान का पृथकतावादी दावा सांस्कृतिक भेदों पर आधारित है। इस अंतर के बिना एक वैशिष्ट्य और है। भाषायी अंतर सांस्कृतिक अंतर का ही दूसरा नाम है।

यदि कर्नाटक और आंध्र की पृथकतावादी मांग में कोई परेशानी की बात नहीं है, तो पाकिस्तान को पृथक कर देने की मांग में ही क्या परेशानी है? यदि यह प्रभाव के लिहाज से विघटनकारी भी है तो महाराष्ट्र से कर्नाटक अथवा मद्रास से आंध्र जैसे हिंदू प्रांतों की पृथकता से अधिक अनिष्टकारी नहीं है। पाकिस्तान जो उस सांस्कृतिक ईकाई का प्रादुर्भाव है जो अपने विशिष्ट सांस्कृतिक विकास के लिए स्वतंत्रता की मांग कर रहा है।

साभार :
बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर
सम्पूर्ण वाङ्मय खंड–15
(पृष्ठ सं० 3 से 10 तक)
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

एक राष्ट्र का अपने घर के लिए आह्वान

पृथकता की इन मांगों के पीछे कुछ ऐसे प्रमुख प्रशासनिक, भाषायी अथवा सांस्कृतिक तथ्य हैं, जो सभी को मान्य और स्वीकार्य हैं। इन मांगों के बारे में किसी को भी आपत्ति नहीं और हर कोई उन्हें मान लेने को तैयार है परन्तु हिन्दू कहते हैं कि मुसलमान पृथकता के मुद्दों से भी आगे जा रहे हैं और सवाल उठाते हैं कि वे यह मार्ग क्यों अपना रहे हैं, विभाजन क्यों मांग रहे हैं और सांझे बंधन को तोड़ने के लिए पाकिस्तान और हिंदुस्तान के कानूनी अलगाव अथवा विभाजन जैसी मांग क्यों कर रहे हैं?

इसका जवाब मुस्लिम लीग द्वारा अपने प्रस्ताव में की गई घोषणा में खोजना होगा, जिसमें कहा गया है कि मुसलमान एक पृथक राष्ट्र हैं। मुस्लिम लीग की इसी घोषणा का हिंदुओं ने प्रतिरोध किया है और इसे उपहासारपद बताया है।

हिन्दुओं का आक्रोश स्वाभाविक ही है। भारत एक राष्ट्र है या नहीं, यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना होने के साथ ही एंग्लो–इंडिया (आंग्ल–भारतीयों) और हिंदू राजनीतिज्ञों के बीच विवाद का विषय रहा है। एंग्लो–इंडियन यह जताते हुए कभी नहीं आघाए कि भारत एक राष्ट्र नहीं है, 'भारतीय' तो भारत के लोगों के लिए एक अन्य संज्ञा मात्र ही है। एक एंग्लो–इंडियन के शब्दों में भारत को जानने के लिए यह भूलना होगा कि भारत जैसी कोई चीज है। दूसरी ओर, हिंदू राजनीतिज्ञ और देशभक्त इस बात पर समान रूप से जोर देते रहे है कि भारत एक राष्ट्र है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि एंग्लो–इंडियन के कथन में सार्थकता है। यहां तक कि बंगाल के राष्ट्रीय कवि डॉक्टर टैगोर भी उनसे सहमत हैं। परंतु इस मुद्दे पर हिंदू कभी डॉ. टैगोर के समक्ष भी नहीं झुके। इसके–दो कारण हैं। प्रथमतः–हिंदू यह स्वीकार करने में लज्जा महसूस करते हैं कि भारत एक राष्ट्र नहीं है। ऐसे विश्व में, जिसमें लोगों में राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद विशेष वरदान के रूप में मान्य हैं हिंदुओं के लिए यह महसूस करना स्वाभाविक है, जिसे एस.जी. वेल्स के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भारत के लिए राष्ट्रीयता के बिना होना उतना ही अनुचित होगा जितना कि किसी आदमी का भीड़ में निर्वस्त्र होना। दूसरे यह कि उन्होंने यह महसूस किया था कि राष्ट्रीयता का स्वराज्य के दावे से गहन संबंध है। वह जानते थे कि उन्नीसवीं सदी के अंत तक यह एक मान्य सिद्धांत हो गया था कि जो लोग एक राष्ट्र के रूप में रहते हैं, वे स्वशासन के अधिकारी हैं और यदि कोई भी देशभक्त जो अपनी जनता के लिए स्वशासन की मांग करता है, उसे यह सिद्ध करना होगा कि वह जनता एक राष्ट्र है। इन कारणों से हिंदू ने यह जांचना कभी नहीं छोड़ा कि क्या भारत वास्वत में एक राष्ट्र रहा है या नहीं। उसने इस बारे में कभी विचार किया कि क्या राष्ट्रीयता महज लोगों को राष्ट्र कह देने का सवाल अथवा वास्तव में राष्ट्र होने के सवाल भी है। वह एक बात जानता है कि यदि उसे भारत के लिए स्वशासन की अपनी मांग से सफलता पानी हैं, तो उसे इस बात पर कायम रहना होगा कि भारत एक राष्ट्र है, भले ही वह इसे सिद्ध न कर सके।

उसके इस दावे का किसी भारतीय ने कभी खंडन नहीं किया। यह दावा इतना ग्राह्य रहा कि भारतीय इतिहास के गंभीर अध्येता भी उसके समर्थन में प्रचारात्मक साहित्य की रचना करते रहे, निस्संदेह देशभक्ति की भावना से हिंदू समाज–सुधारक जो यह जानते थे कि यह एक घातक विभ्रम है, खुलकर इस दावे का खंडन नहीं कर सके, क्योंकि जो कोई भी इस पर सवाल करता, उसे तत्काल ब्रिटिश नौकरशाही के पिट्ठू और देश के शत्रु की संज्ञा दी जाती थी। हिंदू राजनीतिक एक लंबे अरसे तक अपने दृष्टिकोण का प्रचार करता रहा। उसके विरोधी एंग्लो–इंडियनों ने उसका जवाब देना बंद कर दिया। उसका प्रचार प्रायः सफल हो रहा था। जब यह सफलता के सन्निकट था, तभी मुस्लिम लीग की यह घोषणा सामने आई जिसने इसमें व्यवधान डाला। यह स्वर क्योंकि एंग्लो–इंडियनों की ओर से नहीं गूंजा, अतएव एक भीषण प्रहार है। हिंदू राजनीतिज्ञों ने वर्षों में जो काम किया था, यह उसे ही तबाह करता है। यदि भारत में मुसलमान एक अलग राष्ट्र हैं, तो भारत निश्चय ही एक राष्ट्र नहीं है। यह कल्पना हिंदू राजनीतिज्ञों के पैरों तले की जमीन ही खिसका देती है। यह स्वाभाविक ही है कि वे क्षोम का अनुभव करें और इसे पीठ में छुरा घोंपे जाने की संज्ञा दें।

छुरा घोंपा गया हो या नहीं, मुद्दा तो यह है कि क्या यह कहा जा सकता है कि मुसलमानों का कोई राष्ट्र है? अन्य बातों का इस मुद्दे से कोई संबंध नहीं हैं। इससे सवाल उठता है राष्ट्र क्या हैं? इस विषय में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। जो जिज्ञासु है, वे उसे पढ़ सकते हैं और विभिन्न बुनियादी अवधारणाओं तथा विभिन्न पक्षों का अध्ययन कर सकते हैं। मगर यह जानना पर्याप्त होगा कि विषय का सार–तत्व क्या है और इसे कुछ शब्दों में ही प्रस्तुत किया जा सकता है। राष्ट्रीयता एक सामाजिक सोच है। यह एकत्व की एक समन्वित भावना की अनुभूति है, जो उन लोगों में जो इससे अभिभूत हैं परस्परता की भावना और उनमें यह अनुभूति जगाती है कि वे एक ही तरूवर के फूल हैं। यह राष्ट्रीय अनुभूति एक दुधारी अनुभूति है। यह जहाँ अपने प्रियजनों के प्रति अपनत्व की अनुभूति है, वहीं जो एक व्यक्ति के अपने प्रियजन नहीं हैं, उनके प्रति अपनत्व–विरोधी अनुभूति भी है। यह एक प्रकार के बोध की अनुभूति है, जो एक ओर जिसमें यह है, उन्हें एकता के इतने मजबूत सूत्र में बांधती है कि आर्थिक विभिन्नताओं अथवा सामाजिक वर्गीकरण से उद्भूत सभी मतभेदों पर विजय पा जाती है। दूसरी ओर, उन्हें यह उन लोगों से अलग भी करती है जो उनके जैसे नहीं हैं। यह किसी अन्य समूह से संबद्ध नहीं होने का भावबोध भी जगाती है। यही राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय भावना का सार–तत्व है।

अब इस कसौटी पर मुस्लिम दावे को कसिए। क्या यह तथ्य है या नहीं कि भारत का मुसलमान एक विशिष्ट समुदाय है? क्या यह हकीकत है या नहीं कि उनमें एक प्रकार की संचेतना है? क्या यह वास्तविकता है या नहीं कि हर मुसलमान यह सोच रखता है कि वह अपने स्वयं के समुदाय से संबद्ध है, किसी गैरमुस्लिम समुदाय से नहीं?

यदि इन प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक है, तब तो विवाद समाप्त ही हो जाना चाहिए और मुसलमानों का यह दावा बिना किसी संकोच के मान लिया जाना चाहिए।

हिन्दुओं को यह दर्शाना चाहिए कि कुछ मतभेदो के बावजूद हिंदुओं और मुसलमानों के बीच पर्याप्त समानताएं हैं, जिससे वे एक राष्ट्र की रचना कर सकते हैं अथवा सरल भाषा में, मुसलमानों और हिंदुओं की उस एकजुटता को यह दर्शाती है, जो बहुत समय से चली आ रही है।

जो हिंदू इस दृष्टिकोण से असहमत हैं कि मुसलमान अपने आपको एक पृथक राष्ट्र मानते हैं, वे भारतीय सामाजिक जीवन की कतिपय विशिष्टताओं पर निर्भर करते हैं, जो मुस्लिम और हिंदू समाज को एकता के सूत्र में बांधती हुई लगती है।

पहली बात जो कही जाती है, वह यह है कि हिंदुओं और मुसलमानों में जाति का कोई अंतर नहीं है, कि पंजाबी मुसलमान और पंजाबी हिंदू, बिहारी मुसलमान और बिहारी हिंदू, बंगाली मुसलमान और बंगाली हिंदू, मद्रास का मुसलमान और वहाँ का हिंदू, बंबई का मुसलमान और बंबई का हिंदू जातीय तौर पर एक ही समूह के हैं। वस्तुतः मद्रास के मुसलमान और मद्रास के ब्राह्मण में–मद्रासी ब्राह्मण और पंजाबी ब्राह्मण की अपेक्षा कहीं अधिक सजातीयता पाई जाती है। दूसरी बात यह है कि हिंदुओं और मुसलमानों के बीच भाषायी एकता पर जोर दिया जाता है। यह कहा जाता है कि मुसलमानों की अपनी कोई समान भाषा नहीं है जो उन्हें हिंदुओं से पृथक एक अलग भाषायी समूह के तौर पर चिन्हित कर सके। इसके विपरीत, दोनों के बीच पूर्ण भाषायी एकता है। पंजाब में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही पंजाबी बोलते हैं। सिंध में दोनों सिंधी बोलते है। बंगाल में दोनों बंगाली बोलते हैं। गुजरात में दोनों गुजराती बोलते हैं। महाराष्ट्र में दोनों मराठी बोलते हैं। ऐसा ही हर प्रांत में है। केवल नगरों में ही मुसलमान उर्दू बोलते हैं, जबकि हिंदू प्रांतीय भाषा का प्रयोग करते हैं। परंतु बाहर, विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों में, हिंदुओं और मुसलमानों के बीच पूर्ण भाषायी सादृश्य है। तीसरी बात यह कही जाती है कि भारत वह भूमि है जिसमें हिंदू और मुसलमान सदियों से साथ–साथ रहते रहे हैं। यह मात्र जातीय एकता की ही नहीं अपितु दोनों समुदायों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की कतिपय और सांझी विशेषताओं की बात भी की जाती है। यह भी कहा जाता है कि अनेक मुस्लिम वर्गों का सामाजिक जीवन हिंदू रीति–रिवाजों से परिपूरित है। उदाहरण के लिए, पंजाब के आवास। हालांकि ये लगभग सभी मुस्लमान हैं, लेकिन अपने हिंदू नाम कायम रखे हुए हैं और अपनी वंशावलियां, ब्राह्मण विधि से ही रखते हैं। मुसलमानों में भी हिंदू उपनाम पाए जाते हैं। उदाहरण : चौधरी एक हिंदु उपनाम है, परंतु संयुक्त प्रांत और उत्तरी भारत के मुसलमानों में भी यह सामान्य उपनाम हैं। विवाह के मामले में भी कुछ मुस्लिम समुदाय तो नाममात्र के ही मुसलमान हैं। वे विवाह–समारोह में या तो हिंदू–विधि का पालन करते हैं अथवा पहले हिंदू रीति–रिवाज के अनुसार विवाह संपन्न करते हैं और फिर काजी को बुलाकर मुस्लिम विधि से संपन्न कराते हैं। मुसलमानों के कतिपय वर्गों में विवाह, संरक्षकता और उत्तराधिकारिता के मामलों में हिंदू कानून ही लागू होता है। शरीयत अधिनियम पारित होने से पहले पंजाब और उत्तर–पश्चिम सीमा प्रांत में इसका चलन था। सामाजिक क्षेत्र में हिंदू समाज की भांति ही मुस्लिम समाज में भी जाति–प्रथा पाई जाती है। धार्मिक क्षेत्र में यह पता चलता है कि अनेक मुसलमान पीरों के हिंदू शिष्य रहे हैं और उसी तरह से हिंदू योगियो के अनेक मुस्लिम शिष्य हैं। दोनों मतो के संतों के बीच मैत्री के उदाहरणों को भी आधार बनाया जाता है। पंजाब के गिरोट में दो तपस्वियों, जमाली सुल्तान और दियाल भवन, की कब्रें साथ–साथ हैं, जो उन्नीसवी सदी के प्रारंभ में अत्यंत घनिष्टता से रहते थे और हिंदू व मुसलमान समान रूप से वहां नतमस्तक होते हैं। सन् 1700 के करीब बाबा फत्थू एक मुस्लिम संत थे जिनकी मजार कांगड़ा जिले में रानीताल में उन्हें एक हिंदू संत सोढी गुरू गुलाब सिंह से नबी की उपाधि मिली थी।

दूसरी ओर, एक हिंदू संत बाबा शाहाना का मत झंग जिले में माना जाता है कहा जाता है कि वह एक मुस्लिम पीर के चेले थे, जिसने अपने हिंदू अनुयायी का मूल का मूल नाम (मिहर) बदलकर मीर शाह कर दिया था।

ये सब बाते निस्संदेह सच है। इस बारे में तो कोई प्रश्नचिन्ह ही नहीं लगाया जा सकता कि मुसलमानों की विशाल जनसंख्या उसी वंश की है, जिसके हिंदू हैं और यह भी कि सभी मुसलमान एक ही भाषा नहीं बोलते। उनमें से अनेक वही भाषा बोलते हैं जो हिंदुओं द्वारा बोली जाती है, इस वास्तविकता से भी इंकार नहीं किया जा सकता। इस बात का भी खंडन हीं किया जा सकता कि कतिपय सामाजिक रीति–रिवाज दोनों में ही समान है। कुछ धार्मिक पारिपाटियां और पद्धतियां दोनों में समान हैं, यह भी एक वास्तविकता है। परंतु प्रश्न यह है कि क्या इन सबसे इस निष्कर्ष को समर्थन मिलता है कि हिंदू और मुसलमान मिलकर एक राष्ट्र हैं और इन बातों ने उनमें यह अनुभूति जगाई है कि वे एक दूसरे के पूरक हैं।

हिंदू तर्क में अनेक खामियां है। पहली तो यह है कि जिन बातों को समान वैशिष्ट्य के रूप में पेश किया जाता है, वे सामाजिक संश्लेषण–लाने हेतु एक दूसरे के तौर–तरीकों को अपनाने या उनका अनुगमन करने के

किसी सजग प्रयास का परिणाम नहीं है। दूसरी ओर यह एकरूपता कतिपय विशुद्ध नैसर्गिक कारणों का परिणाम है। अधूरा धर्मांतरण भी ऐसा होने का एक कारण है। भारत जैसे देश में जहाँ अधिकांश मुस्लिमकरण न तो पूर्ण था और न ही प्रभावी। ऐसा होने का कारण विद्रोह का भय अथवा मनाने के तरीकों अथवा उपदेशों की अपर्याप्तता के कारण प्रचारकों की कमी भी था। अतएव यदि मुस्लिम समुदाय के अनेक वर्ग अपने धार्मिक और सामाजिक जीवन में अपने हिंदू मूल को उद्घाटित करते हैं, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। आंशिक तौर पर इसका एक कारण समान परिवेश को भी माना जा सकता है, जिसमें हिंदू और मुसलमान सदियों से रहते आए हैं। समान माहौल से समान प्रतिक्रिया व्यक्त करते जाने से समान ढंग भी पनपता है। इन समान विशेषताओं का आंशिक कारण यह भी माना जा सकता है कि सम्राट अकबर ने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच जिस धार्मिक सामंजस्य का सूत्रपात किया था, ये उसी कालखंड के अवशिष्ट हैं। वे ऐसे अतीत का परिणाम हैं। जिसका न वर्तमान है और न भविष्य।

जहाँ तक जाति की एकता, भाषा की एकता और एक ही देश में रहने के मामले पर आधारित तर्क की बात है, तो यह मामला अलग ही है। यदि ये कारण राष्ट्र के बनाने या बिगाड़ने में निर्मायक हों तो हिंदुओं का यह कहना सही होगा कि जाति, भाषा, समुदाय और निवास के कारण हिंदू और मुसलमान एक ही राष्ट्र के घटक हैं। जहाँ तक ऐतिहासिक अनुभव का सवाल है, जाति, भाषा अथवा देश– इनमें से कोई भी लोगों को एक राष्ट्र का रूप नहीं दे पाता। इस तर्क को रेनन ने इतने सुसंगत ढंग से रखा है कि उनकी भाषा में किसी प्रकार का परिमार्जन करना असंभव है। बहुत पहले, राष्ट्रीयता के बारे में अपने सुप्रसिद्ध निबंध में रेनन ने टिप्पणी की थी –

''जाति को राष्ट्र के रूप में नहीं मान लिया जाना चाहिए। सच्चाई यह है कि कोई भी शुद्ध जाति नहीं है और राजनीति को मानवजातीय विश्लेषण पर निर्भर बनाना एक असंगत कल्पना मात्र है। जातीय तथ्य जो कि प्रारंभ में महत्वपूर्ण होते हैं, उनमें अपना महत्व खोये जाने की एक सतत प्रवृत्ति होती है। मानव इतिहास अनिवार्यतः ही प्राणी विज्ञान नहीं है। जाति ही सब कुछ नहीं है, जैसा कि चूहे और बिल्ली के मामलों में होता है।''

भाषा के बारे में रेनन कहते हैं –

''भाषा पुनर्मिलन को आमंत्रण देती है, किंतु यह उनके लिए बाध्य नहीं करती। यूनाइटेड स्टेट्स और इंगलैंड, स्पेनिश अमरीका और स्पेन एक भी भाषा बोलते हैं, किंतु वे मिलकर एक राष्ट्र नहीं हैं। इसके विपरीत स्विटजरलैंड की स्थिरता का आधार वह तथ्य है कि उसकी स्थापना उसके विभिन्न भागों की सहमति से हुई थी, जिनमें तीन या चार भाषाएं बोली जाती हैं। मनुष्य में भाषा से भी ऊपर एक और चीज है – इच्छा। भाषाओं की विविधता के बावजूद, स्विटरलैंड की संगठित होने की 'इच्छा' भाषायी साप्य की अपेक्षा, जो प्रायः दमन से बनता है कहीं अधिक महत्वपूर्ण।

जहाँ तक समान देश की बात है, रेनन का तर्क यह है –

''भूमि राष्ट्र–निर्माण के मामले में जाति के ऊपर नहीं है। भूमि, रणभूमि और कार्य के लिए आधारस्थल उपलब्ध कराती है, व्यक्ति आत्मा प्रदान करता है, जिसके कारण उस पवित्र वस्तु के सृजन में मानव ही सब कुछ है, जिसे जनता कहा जाता है। उसके लिए कोई भी भौतिक स्वरूप यथेष्ट नहीं हैं।

यह दर्शाने के बाद कि जाति, भाषा और देश ही राष्ट्र–निर्माण के लिए पर्याप्त नहीं, रेनन ठोस रंग से सवाल करते हैं– तो फिर राष्ट्र–निर्माण के लिए और क्या आवश्यक है? उनके उत्तर को उनके ही शब्दों में प्रस्तुत किया जा सकता है :

''राष्ट्र एक सजीव आत्मा है, एक आध्यात्मिक सिद्धांत है। दो चीजें, जो एक ही हैं, इस आत्मा, इस आध्यात्मिक सिद्धांत का सृजन करती हैं। एक अतीत से जुड़ी है और दूसरी वर्तमान से। एक है स्मृतियों की समृद्धि विरासत का समान अधिकार, दूसरी है वास्तविक सहमति, एक साथ रहने की आकांक्षा, जो अविभाज्य विरासत सौंपी गई है, उसको निष्ठा सहित कायम रखने की इच्छा। मनुष्य अचानक नहीं आता। व्यक्ति के समान ही राष्ट्र भी प्रयासों के एक सुदीर्घ अतीत का प्रतिफल हैं। इसीलिए पितृ–पूजन भी सर्वथा वैध है। हम आज जो कुछ हैं, उसमें हमारे पूर्वजों का ही योगदान है। एक शौर्यपूर्ण अतीत, महापुरूष गौरव – मेरा तात्पर्य सही ढंग के गौरव से है – ये ही उस सामाजिक पूँजी का सृजन करते हैं जिस पर राष्ट्रीयता का विचार सृजित हो सकता है। अतीत का समान गौरव, वर्तमान में समान आकांक्षा, साथ–साथ मिलकर किए गए महान कार्य, वैसे ही कार्यों को पुनः करने की इच्छा–ये सभी किसी व्यक्ति को राष्ट्र भाव से प्रेरित करने वाली अनिवार्य स्थितियां हैं। हम जितने अधिक कष्ट सहन कर त्याग करते हैं, उसी अनुपात में उनके प्रति हमारी आसक्ति होती है। हम जो मकान बनाते हैं, और जिसे हमें अपने वंशधरों को सौंपना है, उससे हम प्यार करते हैं। स्पार्टन श्लोक 'हम वहीं हैं जो आप थे, हम वहीं बनेंगे जो आप हैं, यही सरल शब्दों में हर देश का राष्ट्रगान हैं।

''अतीत की कीर्ति और संतापों में हम सहभागी हैं, भविष्य में भी इच्छित आदर्श की प्राप्ति की जानी है, हमने साथ–साथ पीड़ा भोगी है, साथ ही आह्लादित हुए हैं और हमारी आशाएं भी समान हैं। ये सभी बातें कई अन्य समान तत्वों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं और अनुकूल विचारों के अनुरूप ही इनका परिवेश है। जाति और भाषा की विभिन्नताओं के बावजूद इन सबका महत्व समझा जा सकता है। मैंने अभी–अभी कहा है कि साथ–साथ पीड़ा भोगी है, वास्तव में ही साथ–साथ पीड़ा भोगना आह्लाद की तुलना में एकता का अधिक मजबूत बंधन है। जहां तक राष्ट्रीय स्मृतियों का संबंध है, विजयों की अपेक्षा शोक के अवसरों का महत्व अधिक है, क्योंकि वे हम पर दायित्व डालते हैं, वे सांझा प्रयासों की मांग करते हैं।

क्या ऐसे कोई सामूहिक ऐतिहासिक पूर्व–दृष्टांत हैं, जिनके बारे में यह कहा जा सके कि हिन्दू और मुस्लिम गर्व अथवा दुख के विषयों में सहभागी बनते हैं? यही इस प्रश्न का सार है। यदि हिंदू यह चाहते हैं कि हिंदू और मुसलमान मिलकर एक राष्ट्र का गठन करें तो इस प्रश्न का उत्तर हिंदुओं को देना ही होगा। जहाँ तक उनके संबंधों का मामला है, तो वे एक दूसरे के खिलाफ संघर्ष–रत सशस्त्र बटालियनों जैसे रहे हैं। सामूहिक उपलब्धि के लिए योगदान का कोई भी सामूहिक चक्र नहीं चला। उनका अतीत तो पारस्परिक विनाश का अतीत है– पारस्परिक शत्रुता का अतीत, राजनीतिक और धार्मिक दोनों ही क्षेत्रों में जैसा कि भाई परमानंद ने 'हिंदू राष्ट्रीय आंदोलन' शीर्षक वाले अपने पत्रक में इंगित किया है– ''इतिहास में हिंदू लोग पृथ्वीराज, प्रताप, शिवाजी और वीर वैरागी का आदर सहित स्मरण करते हैं, जो इस भूमि के सम्मान और स्वतंत्रता के लिए मुसलमानों के विरूद्ध लड़े थे, जबकि मुसलमान भारत पर हमला करने वाले मुहम्मद बिन कासिम और औरंगजेब सरीखे शासकों को अपना राष्ट्र–पुरूष स्वीकार करते हैं।'' धार्मिक क्षेत्र में हिंदू रामायण, महाभारत और गीता से प्रेरणा लेते हैं, तो दूसरी ओर मुसलमान कुरान और हदीस से प्रेरणा लेते हैं। इस तरह, जोड़ने वाले तत्वों की तुलना में अलग करने वाली बातें अधिक हावी हैं। हिंदू और मुस्लिम सामाजिक जीवन में समान भाषा समान जाति और समान देश जैसे कतिपय सांझा अभिलक्षणों पर भरोसा करके, तथा जो कुछ संयोगजनित और दिखावटी है उसे अनिवार्य और मौलिक मानकर, हिंदू भूल कर रहे हैं। राजनीतिक और धार्मिक प्रतिद्वंद्विता उन तथाकथित सामूहिक बधनों की अपेक्षा अधिक गहन है जो उन्हें एक सूत्र में बांध सकते हैं। यह संभावना उस स्थिति में संभवतः भिन्न हो सकती है जब दोनों ही समुदाय इस अतीत को विस्मृत कर दें। रेनन विस्मृत कर देने की प्रवृत्ति को राष्ट्र के निर्माण में अधिक महत्वपूर्ण कारक मानते हैं। उनका कथन हैं :

''विस्मरणीयता, और मैं तो यह भी चाहूंगा कि ऐतिहासिक भूल, राष्ट्र के निर्माण में एक अनिवार्य घटक है और यह इसलिए कि ऐतिहासिक अध्ययनों की प्रगति राष्ट्रीयता के लिए अक्सर खतरनाक भी हो सकता है। ऐतिहासिक अनुसंधान, वस्तुतः हिंसा के उन कृत्यों को पुनः उजागर करता है जो सभी राजनैतिक रचनाओं के अवसर पर होते हैं, ऐसे मामलों में भी जिनकी परिणतियां अत्यंत लाभदायक हो सकती थी। क्रूरता से एकता कभी स्थापित नहीं हो पाती। उत्तरी और दक्षिणी फ्रांस का संघ विध्वंस और आतंक के एक दौर का परिणाम था। यह दौर लगभग एक सौ वर्ष तक चला। फ्रांस नरेश, जिसके बारे में कहा जा सकता है कि वह धर्मनिरपेक्ष आदर्श का स्रष्टा था फ्रांस नरेश जिसने पूर्ण राष्ट्रीय एकता को स्थापित किया था, उस समय अपनी गरिमा खोता हुआ लगा जब उसे अत्यंत निकटता से देखा गया। उसने जिस राष्ट्र का गठन किया था, वही उसके लिए अभिशाप बन गया और जो कुछ किया, उसका ज्ञान आज केवल संस्कृत जन को ही है।

''तुलना करने से ही पश्चिमी यूरोपीय इतिहास के ये महान कानून स्पष्ट हो पाते हैं। फ्रांस नरेश ने अंशतः अपने न्याय से जो प्रशंसनीय उपलब्धियां अर्जित की, वे अनेक देशों के लिए विनाशक सिद्ध हुई। सेंट स्टीफन के ताज के तहत, मगयार और स्लाव उतने ही पृथक रहे जितने कि आठ सौ वर्ष पूर्व थे। अपने प्रभुत्व–काल के तहत विभिन्न तत्वों को एकजुट करने की अपेक्षा हाप्सवर्ग गृह ने उन्हें परस्पर अलग और एक दूसरे के प्रायः विरूद्ध ही रखा। बोहमिया में 'चैक' तत्व एक ही गिलास में तेल और पानी मिलाने की तरह थोप दिए गए। धर्म के आधार पर राष्ट्रों की पृथकता संबंधी तुर्की–नीति के परिणाम तो और भी अधिक गंभीर थे। उससे पूरब का विनाश हुआ। सालेनिका अथवा स्मीइरना जैसे नगरो को ही लें। आप पाएंगे कि पांच–छह समुदायों में से प्रत्येक की अपनी ही स्मृतियां हैं और उनमें शायद ही कोई बात सांझा हो। परंतु राष्ट्र का सार–तत्व तो यह है कि उसके सभी सदस्यों में कई समानताएँ हों और यह भी कि वे सभी अनेक बातों को विस्मृत कर चुके हों। कोई भी फ्रांसीसी नागरिक यह नहीं जानता कि वह वर्गाडियन है, एलना है अथवा विसिगोवा है। हर फ्रांसिसी नागरिक को सेंट वर्थोलोमेव और तेरहवीं शताब्दी में दक्षिण में हुए नरसंहारों को भूल जाना चाहिए। फ्रांस में ऐसे दस परिवार भी नहीं हैं जो फ्रांसिसी मूल का प्रमाण पेश कर सकें, और यदि ऐसे प्रमाण दिए भी जाएं तो निश्चित रूप से दोषपूर्ण होंगे, क्योंकि हजारों ऐसी अज्ञात विषमताएं होंगी जो समग्र आनवंशिक प्रणाली को ही असफल बनाने में सक्षम है।''

खेद का विषय यह है कि दोनों समुदाय अपने अतीत को सर्वथा भूल नहीं सकते अथवा उसका उन्मूलन भी नहीं स्वीकार कर सकते। उसका अतीत उनके धर्म में समाहित है और उनमें से प्रत्येक का अपने अतीत को विस्मृत करना धर्म को त्यागना है। इसलिए ऐसा होने की आशा संजोना भी मात्र कपोल–कल्पना है।

सामूहिक ऐतिहासिक घटनाक्रमों के अभाव में यह हिंदू दृष्टिकोण कि हिंदू और मुसलमान एक राष्ट्र हैं, धूल–धूसरित हो जाता है। उसे कायम रखना मतिभ्रम बनाए रखना है। हिंदुओं और मुसलमानों के बीच एकता की ऐसी कोई उत्कृष्ट लालसा नहीं है, जैसी कि भारत के मुसलमानों के बीच है।

यह कहना निरर्थक है कि मुसलमानों का एक राष्ट्र होने का दावा उनके नेताओं की परवर्ती सोच का परिणाम है। आरोप के तौर पर तो यह सच है। मुसलमान अब तक अपने आपको एक समुदाय कहने में ही पूर्ण संतुष्ट रहते थे। यह तो हाल में ही हुआ है कि उन्होंने अपने आपको एक राष्ट्र के रूप में पेश करना शुरू कर दिया है। परंतु किसी व्यक्ति के इरादों पर चोट करने से ही उसके सिंद्धांत का खंडन नहीं हो जाता। यह कहना कि मुसलमान खुद को कभी समुदाय कहते थे, अतएव उन्हें अब स्वयं को एक राष्ट्र के रूप में संबोधित किए जाने से रोका जा सकता है, राष्ट्रीय अनुभूति के रहस्यपूर्ण मनोवैज्ञानिक कार्यकरण के बारे में गलतफहमी पालना है। ऐसी दलील का आधार यह पूर्वानुमान है कि जहाँ कहीं भी ऐसे लोग रहते हैं जिनमें एक राष्ट्र का गठन करने वाले तत्व मौजूद हैं, उनमें राष्ट्रीयता की वह भावना अभिव्यक्त होनी ही चाहिए जो एक स्वाभाविक परिणति है, और यदि कुछ समय के लिए वे उसे अभिव्यक्त करने में असफल रहें, और बाद में एक राष्ट्र होने का दावा करें, तो वह सारहीन है। परन्तु इस तरह की धारणा के लिए

कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। जैसा कि प्रो० टोयेन्बी ने भी कहा है :

''राष्ट्रीयता के अस्तित्व के लिए एक अथवा ऐसे अनेक मदों की मौजूदगी को एक ठोस दलील के तौर पर पेश करना असंभव तर्क देने के समान है। हो सकता है कि वे युगों से रहे हों और कोई प्रतिक्रिया नहीं हो पाई हो। किंतु एक मामले का दूसरे में बतौर तर्क इस्तेमाल करना असंभव हैं। क्योंकि मदो का वही समूह यहाँ राष्ट्रीयता का निमायक भी बन सकता है, जो वहाँ निष्प्रभावी रहा हो।''

ऐसा सम्भवतः इस तथ्य के कारण है जिसकी ओर प्रो. बार्कर ने इशारा किया है। उनका कहना है कि वह संभव है कि राष्ट्र शताब्दियों से अस्तित्व में रहते हुए भी एक अदृश्य–सा मौन धारण किए रहें, हालांकि उनमें राष्ट्र जीवन का वह आध्यात्मिक सार विद्यमान हो जिससे उसके सदस्य अवगत नहीं हैं। इसी तरह की कोई बात मुसलमानों के मामले में भी निसंदेह हुई है। वे इस तथ्य से अवगत नहीं थे कि उनमें राष्ट्रीय जीवन का आध्यात्मिक सार विद्यमान है। इसी से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अपने एक राष्ट्र होने का दावा इतने विलंब से पेश किया है। परंतु इसका यह अर्थ तो नहीं हो सकता कि राष्ट्रीय जीवन का आध्यात्मिक सार अस्तित्व में था ही नहीं।

यह कहना निरर्थक है कि ऐसे मामले भी हैं जिनमें राष्ट्रीयता का बोध तो रहता है, परंतु पृथव राष्ट्रीय अस्तित्व की आकांक्षा नहीं होती। कनाडा में फ्रांसीसियों और दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों का उदाहरण इस तरह के मामलों में दिया जा सकता है। यह स्वीकार करना ही होगा कि कुछ ऐसे उदाहरण मौजूद हैं, जहाँ लोग अपनी राष्ट्रीयता से अवगत रहे हैं, परंतु उनकी इस सजगता ने भी उनमें वह आवेग पैदा नहीं किया, जिसे राष्ट्रवाद कहा जाता है। दूसरे शब्दों में राष्ट्रवाद से अनुप्राणित हुए बिना भी राष्ट्रों जैसी चेतना विद्यमान हो सकती है। इसी दलील के आधार पर यह तर्क दिया जा सकता है कि मुसलमान यह सोच तो सकते हैं कि वे एक राष्ट्र हैं, परंतु उन्हें उसी कारण एक पृथक राष्ट्रीय अस्तित्व की मांग उठाने की जरूरत नहीं है, वे वैसे ही स्थिति से संतुष्ट क्यों नहीं हो सकते जो कनाडा में फ्रांसिसियों और दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों को प्राप्त है, ऐसी स्थिति तो काफी मजबूत स्थिति है। मगर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ऐसी स्थिति मुसलमानों से विभाजन पर जोर देने का आग्रह करके अपनाई जा सकती है। यदि वे विभाजन पर जोर ही दें, तो उनके दावे के विरूद्ध यह कोई दलील नहीं हो सकती।

कहीं यह दलील नकारने का भ्रम पैदा न कर दे, इसलिए दो बातों की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है। पहली यह कि राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद में फर्क है। ये मानव मस्तिष्क की दो अलग–अलग मनोवैज्ञानिक अवस्थाएं हैं। राष्ट्रीयता से तात्पर्य एक तरह की संचेतना से है, जातीय बंधन के अस्तित्व के प्रति सजगता से है। राष्ट्रवाद से तात्पर्य है 'उन लोगों के लिए एक पृथक राष्ट्रीय अस्तित्व की आकांक्षा, जो इस जातीय बंधन में बंधे हैं।'' दूसरी यह कि यह सही है कि राष्ट्रीयता की भावना के बिना राष्ट्रवाद हो ही नहीं सकता। परंतु इस बात को भी ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रीयता की भावना की मौजूदगी के बावजूद राष्ट्रवाद की सोच सर्वथा अनुपस्थित हो सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि राष्ट्रीयता से राष्ट्रवाद उजागर होने के लिए दो शर्तें आवश्यक हैं। प्रथम, एक राष्ट्र के रूप में रहने की इच्छा का जाग्रत होना, दूसरी, एक क्षेत्र का होना जिसे राष्ट्रवाद अधिगृहीत कर एक राज्य तथा राष्ट्र का सांस्कृतिक घर बना सके। ऐसे क्षेत्र के अभाव में क्या होगा, इसे स्पष्ट करने के लिए लॉर्ड ऐक्टन की इस उक्ति का उपयोग करना होगा कि 'आत्मा एक ऐसे शरीर की खोज में भटकती है जिसमें वह पुनः जीवन का संचार करे, परंतु उसे न पाने पर वह मर जाती है।'' मुसलमानों ने एक राष्ट्र के रूप में रहने की इच्छा विकसित की है। उनके लिए प्रकृति ने एक ऐसा क्षेत्र तलाश लिया है जिसे अधिगृहीत कर वे नवजात मुस्लिम राष्ट्र का सांस्कृतिक गृह और राज्य बना सकते हैं। इन अनुकूल परिस्थितियों में यदि मुसलमान यह कहते है कि वे ऐसी स्थिति अपनाने में संतुष्ट नहीं है जिसे कनाडा में फ्रांसिसियों ने अपनाया है अथवा दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों ने अपनाया है, और वे अपना एक राष्ट्रीय गृह चाहते हैं जिसे वे स्वयं का अपना कह सके, तो उनके ऐसा कहने पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

साभार :

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खंड–15 (पृष्ठ सं० 11 से 21 तक), डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

छुआछूत की व्यवसायजन्य उत्पत्ति

अब हम छुआछूत की व्यवसायजन्य उत्पत्ति के मूल सिद्धांत पर चर्चा करेंगे। श्री राइस के अनुसार छुआछूत का आधार गंदे और घृणित पेशा पाया जाता है। यह मत कुछ युक्तिसंगत जचता है लेकिन इससे छुआछूत की उत्पत्ति को सच्ची व्याख्या स्वीकार करने में कुछ कठिनाइयां है। अछूत जिन गंदे और घृणित पेशों को करते हैं वे सभी मानव समाजों में समान हैं। हर समाज में ऐसे लोग है जो इन पेशों को करते है। संसार के दूसरे देशों में ऐसे लोग के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार क्यों नहीं हुआ? दूसरा प्रश्न है कि क्या द्रविड़ लोगों को इन पेशों से अथवा इन पेशों को करने वालो से घृणा थी? इस विषय में हमारे पास किसी प्रकार का कोई साक्ष्य नहीं है। लेकिन आर्यों के बारे में हमारे पास साक्ष्य हैं। इस साक्ष्य से यही प्रमाणित होता है कि आर्य भी दूसरे लोगों की तरह के थे और उनको पवित्रता तथा अपवित्रता की कल्पना दूसरे प्राचीन लोगों से भिन्न न थी। नारद स्मृति के इस उद्धरण पर विचार करने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्यों को गंदे पेशे करने में किसी प्रकार का कोई एतराज न था। पांचवें अध्याय में नारद ने सेवा धर्म के उल्लंधन का विचार किया है। उस परिच्छेद में ये श्लोक आए हैः–

(1) मनीषियों ने शास्त्रों में पांच प्रकार के सेवक बताए है। इनमें चार प्रकार के कर्मकार है और पांचवे दास है। जिनकी पंद्रह कोटियां है।

(2) एक विधार्थी,'एक प्रशिक्षु, एक भृत्य तथा एक अधिकारी।

(3) मनीषियों ने घोषणा की है कि परावलंबित होना तो सभी के लिए समान हैं, किन्तु उनकी पृथक स्थिति और आय उनकी जाति और पेशे पर निर्भर करती है।

(4) यह बात जान लेने की है कि पेशे दो प्रकार के होते हैं। शुद्ध और गंदे या पवित्र और अपवित्र गंदे पेशे दास करते हैं जो शुद्ध पेशों को कर्मकार (शूद्र) करते है।

(5) दरवाजे, शौचालय, सड़क तथा कूड़ा फैंकने की जगह पर झाड़ू लगाना, शरीर के गुहय अंगों का मर्दन, उच्छिष्ट भोजन तथा मल–मूत्र को इकट्ठा कर फेंकना।

(6) और अंत में जब स्वामी चाहे तो उसके अंगों की मालिश करना। यह काम गंदे (अपवित्र) माने जाने चाहिए। इनके अतिरिक्त शेष सभी काम पवित्र हैं।

2.5 इस प्रकार शुद्ध काम करने वाले चार प्रकार के सेवकों की गिनती करा दी गई है। दूसरे जो घिनौना कार्य करते है दास हैं और वे पन्द्रह प्रकार के है।

यह स्पष्ट है कि गंदा काम करने वाले दास थे और झाड़ू लगाना गंदे काम में शामिल था। प्रश्न उठता है दास कौंन थे? क्या वे आर्य थे अथवा अनार्य? इसमें कोई संदेह नहीं कि आर्यों मे दास प्रथा थी। एक आर्य दूसरे आर्य का दास हो सकता था। चाहे आर्य किसी भी वर्ग का हो वह दास हो सकता था। एक क्षत्री दास हो सकता था। एक वेश्य भी, एक ब्राम्हण भी दास हो सकने की संभावना से सर्वथा मुक्त न था। जब देश में चातुर्वर्ण्य एक कानून की तरह प्रचलित हुआ तो दास प्रथा में कुछ परिवर्तन आया। नारदस्मृति के निम्नलिखित उद्धरणों से उस परिवर्तन का रूप स्पष्ट हो जाता है :–

39. ''चारों वर्णों के प्रतिलोम क्रम में दास प्रथा के लिए स्थान नहीं यदि आदमी अपने वर्ण धर्म का पालन न करें तो वह इस नियम का अपवाद है। उस अवस्था में दासत्व पत्नी की स्थिति के समान है।'' याज्ञवलक्य भी कहता है :–

183 (2) ''दास प्रथा वर्ण व्यवस्था के अनुलोम क्रम से है प्रतिलोम क्रम से नहीं।'' याज्ञवल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर की मिताक्षरी नामक टीका में इसकी व्याख्या इस तरह की गई है।

''ब्राम्हणों और शेष वर्णों में दास प्रथा अनुलोम क्रम में रहेगी क्षत्रिय और शेष सभी ब्राम्हण के दास हो सकते है। वैश्य और शूद्र क्षत्रिय के दास हो सकते हैं। शूद्र, वैश्य का दास हो सकता है। यह दास प्रथा अनुमोल क्रम से ही लागू हो सकती है।''

यह परिवर्तन दास प्रथा का पुनर्संगठन मात्र था और उस क्रमागत असमानता का आधार जो चातुर्वर्ण्य की आत्मा है इसे ठोस रूप में व्यक्त करें तो इस नियम का तात्पर्य यह हुआ कि एक ब्राम्हण, एक क्षत्रिय, एक वैश्य तथा एक शूद्र ब्राम्हण का दास हो सकता था।

क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र क्षत्रिय का दास हो सकता है। वैश्य और शूद्र वैश्य का दास हो सकता है। किंतु शूद्र का दास केवल शूद्र ही हो सकता है। यह सब होने पर दास प्रथा कानून प्रचलित रहा। ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र कोई भी हो यदि वह दास बनता तो उस पर वह नियम लागू ही होता।

दासों के लिए निश्चित हुए कर्तव्य की ओर ध्यान दें तो यह परिवर्तन किसी तरह का भी परिवर्तन नहीं है। उनका अब भी यह मतलब रखा कि यदि एक ब्राम्हण दास बने, एक क्षत्रिय दास बने, एक वैश्य दास बने अथवा एक शूद्र दास बने तो उसे झाड़ू लगाने का काम करना ही होगा। हां, एक ब्राम्हण किसी क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र के घर में झाड़ू नहीं लगाएगा। किंतु वह एक ब्राम्हण के घर भंगी का काम करेगा, वह एक शूद्र के घर में नहीं करेगा। इसलिए यह स्पष्ट है कि ब्राम्हण, क्षत्रिय और वैश्य जो निश्चित रूप से आर्य है, गंदे से गंदा भंगी का काम करते हैं। यदि भंगी का काम एक आर्य के लिए घृणित कार्य नहीं था तो वह कैसे कहा जा सकता है कि गंदे पेशों को करना छुआछूत का कारण है इसलिए यह सिद्धांत कि गंदे पेशे में लगना अस्पृश्यत है, निराधार सिद्ध होता है।

साभार बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर, सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–14, (पृष्ठ सं० 65 से 67 तक)
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

गणतंत्र दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं ...
रामस्वरूप
अध्यक्ष लेबर डिर्पाटमेन्ट मिनिस्टीरियल एम्पलाइज एसोसिएशन
श्रमायुक्त कार्यालय कानपुर

गणतंत्र दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं ...
अंशु सखवार
185 एम. आई. जी. 3 दबौली वेस्ट
पो० दादानगर, कानपुर नगर

गणतंत्र दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं ...
इं राम अवतार चौधरी
सहायक अभियन्ता
जोन–02, किदवई नगर, कानपुर

गणतंत्र दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं ...
जगदीश प्रसाद
कनिष्ठ सहायक हथकरघा एवं वस्त्राद्योग निदेशालय, कानपुर

EQUALITY OPPORTUNITY JUSTICE & WELFARE SELF CONFIDENCE UNITED RESPONSIBILITY Estd.14 April, 1974 DIVISIONAL UNIT - KANPUR

अखिल भारतीय अनुसूचित जाति/जन जाति एवं बौद्धिष्ट भारतीय जीवन बीमा निगम कर्मचारी कल्याण संघ क्षेत्रीय व मंडलीय इकाई कानपुर की ओर से द्रविड भारत सामाजिक जागरूकता अभियान से जुड़े सभी सदस्यों एवं पाठकों को

गणतन्त्र दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ.....

सी. एल. कुरील (राष्ट्रीय सचिव विधि), हरि नाथ कुमार (क्षेत्रीय महासचिव), अक्षय लाल, आर. के. आजाद, जगजीवन राम (अध्यक्ष), एस. के. गौतम (उपाध्यक्ष), संतोष कुमार (महासचिव), विनोद कुमार (सचिव प्रशा०), रवि मोहन सोनकर सचिव (संगठन), समीर आनन्द सचिव (संगठन), ओ. पी. कुरील सचिव (संगठन), गीता रावत सचिव (विधि), रघुनन्दन प्रसाद सचिव (प्रचार), राकेश कुमार सचिव (प्रचार), रविन्द्र नाथ सचिव (प्रचार), राम अवध (कोषाध्यक्ष), गोपाल गोठी, दीपक हजारिया, जगदीश प्रसाद एवं कल्याण संघ के सभी सदस्य व पदाधिकारियों की ओर से गणतंत्र दिवस की हार्दिक शुभकामनायें ...

राष्ट्रीय आजीविका सेवा केन्द्र

अनुसूचित जाति/जनजाति हेतु अध्यापन एवं मार्ग दर्शन केन्द्र

इलायापेरूमल कमेटी (1969) की संस्तुति को स्वीकार करते हुए भारत सरकार ने प्रशिक्षण एवं रोजगार महानिदेशालय, डी.जी.ई. एण्ड टी.के. अधीन देश के राज्यों में अनुसूचित जाति/जनजाति हेतु अध्यापन एवं मार्ग दर्शन केन्द्रों के स्थापना की है। इसी क्रम में वर्ष 1970 ये यह केन्द्र कानपुर में अनुसूचित जाति/जनजाति की सेवा में कार्यरत है।

उद्देश्य :

1. शिक्षित अनुसूचित जाति/जनजाति के बेरोजगार अभ्यर्थियो के सही मार्गदर्शन देते हुए सही दिशा निर्देशन उपलब्ध कराना।
2. अध्यापन एवं प्रशिक्षण के द्वारा बेरोजगार अनुसूचित जाति/जनजाति के अभ्यार्थियों को रोजगार पाने की क्षमता में वृद्धि करना।
3. अनुसूचित जाति/जनजाति अभ्यार्थियों के रोजगार बाजार की सूचना देना एवं रोजगार प्राप्त करने में अनेक कार्यक्रमों द्वारा विविध स्तर पर उनकी सहायता करना।

'सी.जी.सी.' कानपुर की गतिविधियाँ

पंजीयन पूर्व मार्गदर्शन • सम्प्रेषण पूर्व मार्गदर्शन • साक्षात्कार पूर्व मार्गदर्शन • सामूहिक पूर्व मार्गदर्शन • व्यक्तिगत/सूचना मार्गदर्शन • आत्मविश्वास कार्यक्रम • पुनरीक्षण कार्यक्रम • व्यवसायिक सूचना • प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी हेतु परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण। • टंकण एवं आशुलिपि प्रशिक्षण • कर्मचारी चयन आयोग एवं अन्य समूह ''ग'' परीक्षा की तैयारी हेतु विशेष कोचिंग कार्यक्रम। • स्व–रोजगार • उच्च शिक्षा के साथ में भविष्यी नियोजन हेतु परामर्श • कम्प्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रम • साक्षात्कार कला • अभिभावकों से विचार विमर्श • रोजगार सम्बन्धी अन्य समस्यायें।

सत्यमेव जयते

भारत सरकार
श्रम एवं रोजगार मंत्रालय
डी.जी.ई.एण्ड टी.

National Career Service
सही अवसर, सही समय
Right Opportunities, Right Time

नेशनल कैरियर सर्विस सेन्टर फॉर एस.सी./एस.टी.
जी. टी. रोड, कानपुर

भोक्या कासीम
उपक्षेत्रीय रोजगार अधिकारी
कार्यालय परिसर, जी.टी. रोड, कानपुर
मो० : 9695022351, 7905988309

गणतंत्र दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं ...

अरविन्द कुमार

प्रबन्धक उ० प्र० कॉपरेटिव बैंक लि०
शाखा गोविन्द नगर, कानपुर
मो० : 9956976995

गणतंत्र दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं ...

कमलेश कुमार कमल

श्रम अन्वेषक अपर श्रमायुक्त
कार्यालय सर्वोदय नगर, कानपुर
मो० : 9918118086

गणतंत्र दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं ...

आर. के. भारती

अध्यक्ष दि बुद्धिष्ट सोसाइटी ऑफ इण्डिया
शाखा कानपुर नगर, पूर्व जिला उपमंत्री
उ० प्र० लेखपाल संघ जनपद, कानपुर नगर
मो० 9580692134

गणतंत्र दिवस एवं रविदास जयन्ती की हार्दिक शुभकामनाएं ...

आनन्द मोहन
संयुक्त आयुक्त
हथकरघा एवं वस्त्र उद्योग, कानपुर

रामचरन
पम्प आपरेटर
कानपुर विकास प्राधिकरण
मो० : 9984251800

संजीव कनौजिया
क्षेत्रीय लेखाधिकारी, कार्यालय मुख्य अभियन्ता (का.क्षे.)
उ0 प्र0 जल निगम कानपुर

हीरालाल संखवार
सचिव एस.सी./एस.टी. एसो.
मुख्य डाकघर कानपुर

राजेन्द्र कुमार कुरील
लेखाकार, पी.पी.एन.डिग्री कालेज, कानपुर

नीतू जयसवाल
अनुदेशिका भाषा हिन्दी
राजकीय औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान महिला
लाल बंगला, कानपुर, मो. : 9838291001

यू. पी. फेडरेशन ऑफ मिनिस्ट्रियल सर्विसेज
एसोसिएशन, कानपुर नगर
रजनीश श्रीवास्तव जिला अध्यक्ष
मेवालाल वरिष्ठ उपाध्यक्ष, मो0 : 9451948043
रोहित तिवारी (मंत्री)

सुरेश चन्द्र
सहायक यूनाइटेड इण्डिया इंशोरेंस
कानपुर

इं. के.के.लाल
प्रधानाचार्य/असिस्टेन्ट
अप्रेन्टिस–शिप एडवाइजर राजकीय
आई.टी.आई., फैजाबाद (उ.प्र.)

इं. डी. एस. गौतम
सहायक अभियंता, उ.म. क्षेत्रीय कार्यालय
भारतीय जीवन बीमा निगम, कानपुर

यतीन्द्र सोनकर
द्वारा – शिव शंकरलाल विषारद
स्मारक समिति, कर्नेलगंज, कानपुर

रामबालक
शाखा प्रबन्धक, एस. ओ. बी. ए. सी.
भारतीय जीवन बीमा निगम, कार्यालय

अजय कुमार
लिपिक
कानपुर विकास प्राधिकरण, कानपुर
मो० : 7905305856

श्रीराम कमल (समाजसेवी)
ग्राम–बगदौधी बॉगर, पो0–मन्धना,
कानपुर नगर, मो0: 9450342251

धीरेन्द्र कुमार
लिपिक
कानपुर विकास प्राधिकरण, कानपुर
मो० : 9721358899

कमलेश कुमार सखवार
अनुदेशक आई. टी. आई.
पाण्डु नगर, कानपुर
मो० : 9415727152

भूप सिंह
लिपिक
कानपुर विकास प्राधिकरण, कानपुर
मो० : 9455646040

नन्दकुमार कोटार
कार्यदेशक आई. टी. आई.
पाण्डु नगर, कानपुर
मो० : 9648817697

कृपाल बहादुर
मैकेनिक मशीन टूलमेन्टीनेस
आई. टी. आई., पाण्डु नगर, कानपुर
मो० : 9450730112

रामभवन आर्य
प्रबन्धक
उ0 प्र0 को आपरेटिव बैंक लि.
शाखा – क्राइस्ट चर्च कॉलेज, कानपुर
मो० : 9839380325

रजनी मधु
ए 1376, आवास विकास, हंसपुरम, कानपुर

राजनाथ प्रसाद
व्यावसायिक/फोरमैन वर्क शाप
विकलांग पुनर्वास वी.आर.सी. ए.
टी. परिसर, उद्योग नगर, कानपुर

राज नारायण
वरिष्ठ लिपिक
आई.टी.आई., पाण्डु नगर, कानपुर
मो० : 9389328660

समाज सुधार

नारायण गुरू के समय का केरल नाना प्रकार के अंधविश्वासों, कर्मकांड़ों, पुरातन रीति–रिवाजों तथा प्रथाओं में जकड़ा हुआ था। अवर्णों में कुरीतियां कुछ अधिक ही थी। इनके कारण प्रगति में रूकावटें तो पड़ती ही थीं बहुत से परिवार, अपना नाम ऊंचा रखने के प्रयास में बर्बाद हो जाते थे। इन कुरीतियों में तीन – तालिकेट्टू, तिरंडुकुली और पुलिकुटि प्रमुख थीं।

तालिकेट्टू 12 वर्ष से कम उम्र की लड़कियों का नकली विवाह था। निश्चित तिथि पर परिवार की इस उम्र से कम की सभी लड़कियां रंग–बिरंगी पोशाकों में एक पंक्ति में खड़ी रहती थीं। एक या कई दूल्हें उस समय आते और सबको ताली बांधते थे। इस रस्म के पूरा होने पर सभी नकली दूल्हें अपनी पोशाक लौटाकर अपनी फीस लेकर चलते बनते थे। फिर चार दिन तक धूम–धाम से खाना–पीना चलता था। इसमें बहुत खर्च तो होता है था बल्कि, जैसा कि एक बार न्यायमूर्ति सदाशिव अय्यर ने कहा था, लड़कियों का कुमारत्व भी समाप्त हो जाता था।

तिरंडुकुली लड़की के यौवानारम्भ का उत्सव था। नियत तिथि पर लड़की को स्नान कराया जाता था तथा धूम–धाम से खाना–पीना होता था। यह सर्वसाधाराण को एक तरह से सूचना देना था कि लड़की विवाह की आयु की हो गई हैं फिर वास्तविक वर की ओर से उसे कपड़े दिए जाते थें। कपड़े का लेन–देन अंधेरी कोठरी में वर की बहन द्वारा होता था। ऐसा भी कभी हो जाता था कि कपड़े गलत लड़की को दे दिए जाते थे। इस रस्म के बाद पति की बहन दुल्हन को घर लिवा जाती थी।

पुलिकुटि पत्नी के प्रथम गर्भ के सातवें महीनें में रस पीने–पिलाने की प्रथा थी। पति अपनी पत्नी को सात प्रकार की खट्टी वस्तुओं से तैयार रस पिलाता था। फिर दूसरे लोग रस पीते–पिलाते थें।

नारायण गुरू कार्यकर्ताओं को हिदायत दी गई कि एकजुट होकर वे इन प्रथाओं को मिटाने में लग जाए। स्वमीजी इतने से चुप नहीं रहे। लोगों से मिलकर,पत्र लिखकर तथा मौके पर स्वयं उपस्थित होकर उन्होंने इन कुरीतियों के खिलाफ मुहिम तेज की। दक्षिण ट्रावनकोर के करीमकुलम स्थान पर 18 जनवरी 1911 को एक बहुत धनी इढ़वा प्रमुख के यहां तालिकेट्टू की रस्म पूरी होने जा रहीं थी। एक बड़ा सुसज्जित मंडप लगा था। बाद्यवृंद बज रहे थे। हिन्दू, ईसाई तथा मुसलमानों में से गण्मान्य व्यक्ति उस अवसर पर उपस्थित थे। उसी अवसर पर नारायण गुरू आ पहुंचे। उन्होंने घर धनी को बुलाकर उत्सव को समाप्त कर देने को कहा। प्रमुख उनका भक्त था। उसने स्वामी से निवेदन किया कि इसके बाद उनके यहां इस प्रकार के समारोह नहीं होंगे। उस पर स्वामी ने कहा, बाद में क्यों इसे क्यों न अभी समाप्त कर दिया जाए। प्रमुख की पत्नी ने बड़ी मुस्तैदी से स्वामीजी का समर्थन किया और उत्सव वहीं समाप्त हो गया।

नारायण गुरू ने विवाह सम्मन्न कराने के लिए एक सरल, सुरक्षित और सस्ता नियम बनाया। विवेकोदयम में उसे प्रकाशित भी करा दिया गया।

विवाह सार्वजनिक स्थान पर होता। उक्त अवसर पर दस से अधिक व्यक्तियों का उपस्थित होना वर्जित था। मत्रोच्चारण के बाद वधू के पिता कन्यादान करता था। वधू वर को जयमाला डालती और वर वधू को ताली बाँधता। वेदी की वर–वधू परिक्रमा करते और उपस्थित लोग पति–पत्नी को आशीर्वाद देते। उसके बाद वहां रखे हुए रजिस्टर में आवश्यक लिखा–पढ़ी होती और शादी समाप्त हो जाती।

इढ़वा लोगों में उन दिनो बहुपत्नी और बहुपति की कुरीतियां भी प्रचलन थीं। नारायण गुरू ने इस प्रथा को भी बंद कराया।

नारायण गुरू के समय में इढ़वा लोगों में उत्तराधिकार सम्बंधी तीन नियम थे। एक के अंतर्गत एक व्यक्ति के मरणोपरांत उसकी सम्पत्ति उसके बेटो को, दूसरे (मरूमक्कतरम्) के अंतर्गत मृत व्यक्ति की जायदाद उसकी बहन की बेटियों को मिलती। तीसरा नियम दोनों का मिला–जुला रूप था। उन्होंने सलाह दी कि मरूमक्कतरम् नियम को मानने वाले व्यक्ति की जायदाद में उसके मरणोपरांत कुछ भाग उसकी पत्नी और बेटों को भी मिलना चाहिए। अन्यथा विवाह का कुछ मूल्य ही नहीं रह जाएगा।

मद्य जहर है

शराब एंव ताड़ी पीने के विरूद्ध नारायण गुरू ने एक महिम चलाई। यहां यह बता देना जरूरी जान पड़ता है कि इढ़वा जाति के एक छोटे तबके की इससे रोजी–रोटी चलती थी। इसके बावजूद उन्होंने कड़े शब्दों मे इसकी भर्त्सना की थी। 1921 के अपने जन्मदिन के संदेश में मद्य को जहर बताते हुए नारायण गुरू ने कहा था, ''मद्य जहर है। न तो इसका उत्पादन करना चाहिए, न दूसरों को देना चाहिए और न खुद पीना चाहिए। ताड़ी निकालने वाले के शरीर से दुर्गंध आती है। उसके घर से दुर्गंध आती है। उसके घर से, यही नहीं जिस वस्तु को वह छू देता है, उसी से दुर्गंध आती है।''

एक अवसर पर उन्होंने ताड़ी की तुलना प्लेग से की थी। उनका विचार था कि जिस प्रकार कोढ़ से प्रभावित बंग से सारा शरीर विषाक्त हो जाता है उसी प्रकार ताड़ी निकालने वाले कुछ व्यक्ति सारे समाज को दूषित कर देते है। उन्होंने आगे कहा था,'' जिस तरह हम रोगी के अंग को काट फेकते है उसी प्रकार हमें ताड़ी निकालने वाले को समाज से दूर हटा देना चाहिए। जब वे ताड़ी निकालना छोड़ देगे तब हम उन्हें फिर वापस ले लेंगे।

अछूतों को भी समान अधिकार

नारायण गुरू सभी मनुष्यों को समान मानते थे। सभी को समान हक दिलाने के लिए वह जीवनपर्यंत संघर्ष करते रहे। पर इढ़वा जाति में कुछ ऐसे भी थे जो उच्च जातियों के बराबर अपने लिए अधिकार तो मांगते थे पर अपने से निम्न जाति–पुलया, परेया को अपने

सेवा में,

नाम .....

पता .....

.....

.....

बराबर अधिकार और अवसर देने के विरूद्ध थे। स्वामीजी को इस तरह की कई घटनाओं का सामना करना पड़ा था। उनमें कुछ इस प्रकार हैं –

1. एक बार त्रिवेन्द्रम के एक मंदिर के किसी प्रश्न के लेकर इढ़वा लोगों मे दो गुट हो गए। दोनों के अगुवा स्वामीजी के पास बीच–बचाव के लिए गए। स्वामीजी जब उन दोनों गुटों की बात सुन रहे थे कि कुछ लोगों को दूर खड़े देखा। पूछने पर उन्हें बताया गया कि वे पुलया है और स्वामीजी को देखने आए हैं। जब स्वामीजी ने कहा कि मंदिर में उन्हें प्रवेश क्यों नहीं करने दिया गया। वे भी मनुष्य है, उन्होंने स्नान भी किया है और साफ कपड़े भी पहने हुए है। उस पर दोनों दलों ने कहा कि यह तो संभव नहीं है। एक क्षण चुप रहने के बाद स्वामी चलने के लिए उठ खड़े हुए। जब लोगों ने पूछा कि हमारे झगड़े तो निपटे नहीं। उस पर स्वामी जी ने कहा,'' आप में मतभेद कहां है। कम से कम मंदिर में अछूतों के प्रवेश पर तो आप एक राय के हैं ही।'' इतना कह कर वह चल दिए।

2. 1908 में नारायण गुरू ने तेनीचेरी के जगन्नाथ मंदिर में मूर्ति की प्रतिष्ठा की। उसी समय बातचीत के दौरान उन्होंने मंदिर को अछूतों के लिए खोल देने के पक्ष में समर्थन किया। अछूतों के मंदिर में प्रवेश के प्रश्न पर उस समय जो वाद–विवाद चल रहा था, उस पर स्वामीजी के निर्णय को सुनकर मूरकोथ कुमारन ने उनके पांव पकड़ लिए। अपने समय के प्रमुख साहित्यकार कुमारन ने अपने जीवन में पहली बार और अंतिम बार किसी के पांव पकड़े थे।

3. अद्वैत आश्रम अलवये में कुछ पुलया लड़के पढ़ रहे थें। आश्रम में खाना बनाने और परोसने के काम में वे हाथ बंटाया करते थे। जब भी कोई बाहर का आदमी भोजन करने बैठता तो स्वामीजी उनको खाना परोसने वाले लड़को की जाति विशेष तौर पर बताते थे। स्वामीजी के सामने किसी की क्या हिम्मत थी कि वे विरोध प्रगट करें।

4. मुटनथारा (त्रिवेन्द्रम) में 1916 में एक पुलया सभा को सम्बोधित करते हुए नारायण गुरू ने कहा,''सभी मनुष्यों की एक ही जाति है। मनुष्यों के स्तर में फर्क हो सकता है पर किस्म में नहीं। कुछ धनी, शिक्षित और अधिक स्वच्छ हो सकते हैं। इनमें कुछ में कमी हो सकती है। चमड़ी के रंग मे फर्क हो सकता है। इनमें कुछ में कमी हो सकती है। चमड़ी के रंग मे फर्क हो सकता है। इनके अतिरिक्त मनुष्यों में कुछ भेद नहीं हो सकता। पुलया लोगों के पास धन और शिक्षा का आभाव है। इन कमियों को पूरा किया जा सकता है।''

साभार श्री नारायण गुरू
(पृष्ठ सं० 56 से 60 तक)
देवेन्द्र दैसन्तरी

द्रविड़ भारत एवं आम औरत महासभा ट्रस्ट की ओर से
द्रविड़ भारत सामाजिक जागरूकता अभियान से जुड़े सभी सदस्यों, पाठकों एवं सहयोगियों को गणतंत्र दिवस एवं रविदास जयंती की हार्दिक शुभकामनायें
संपादक - उमेश्वरी देवी मो. : 9005204074